P: ISSN NO.: 2321-290X RNI : UPBIL/2013/55327 VOL-8* ISSUE-9* May- 2021
E: ISSN NO.: 2349-980X **Shrinkhla Ek Shodhparak Vaicharik Patrika**

तुलसीदास के साहित्य की वर्तमान में प्रासंगिकता

The Current Relevance of Tulsidas's Literature

Paper Submission: 27/04/2021, Date of Acceptance: 10/05/2021, Date of Publication: 12/05/2021

ऋषिपाल
सह प्राध्यापक एवं अध्यक्ष,
हिन्दी विभाग,
बाबू अनन्त राम जनता महाविद्यालय,
कौल, कैथल, हरियाणा, भारत

सारांश

गोस्वामी तुलसीदास भारतीय समाज, साहित्य और संस्कृति के न केवल उन्नायक हैं, बल्कि उच्च कोटि के समाज सुधारक के रूप में भी जाने जाते हैं। उनके साहित्य में भारतीय संस्कृति के जीवन मूल्यों एवं आदर्शों का साक्षात परिचय होता है। वे भारत के मध्यकालीन सामन्ती समाज में पैदा हुए थे। उस समय का सामाजिक परिवेश ऊँच–नीच, अमीर–गरीब, शोषक–शासक आदि वर्गों में बंटा हुआ था।

Goswami Tulsidas is not only the icon of Indian society, literature and culture, but is also known as a social reformer of the highest order. His literature gives a direct introduction to the life values and ideals of Indian culture. He was born in the medieval feudal society of India. The social environment of that time was divided into high-class, rich-poor, exploitative-ruling classes.

मुख्य शब्द : गोस्वामी तुलसीदास, भारतीय समाज, साहित्य, संस्कृति।
Goswami Tulsidas, Indian Society, Literature, Culture.

प्रस्तावना

गोस्वामी तुलसीदास भारतीय समाज, साहित्य और संस्कृति के न केवल उन्नायक हैं, बल्कि उच्च कोटि के समाज सुधारक के रूप में भी जाने जाते हैं। उनके साहित्य में भारतीय संस्कृति के जीवन मूल्यों एवं आदर्शों का साक्षात परिचय होता है। वे भारत के मध्यकालीन सामन्ती समाज में पैदा हुए थे। उस समय का सामाजिक परिवेश ऊँच–नीच, अमीर–गरीब, शोषक–शासक आदि वर्गों में बंटा हुआ था।

अध्ययन का उद्देश्य

प्रस्तुत शोधपत्र का उद्देश्य तुलसीदास के साहित्य की वर्तमान में प्रासंगिकता का अध्ययन करना है।

साहित्यावलोकन

विश्व स्तरीय शोध–पत्रिका UGC APPROVED CARE LISTED JOURNAL शोध अंक – 51, अक्टूबर–दिसम्बर 2020 में डॉ॰ मधुशर्मा के शोध–पत्र ''तुलसीदास के साहित्य में भारतीय संस्कृति एवं हिन्दी भाषा का अनुशीलन'' मे वे लिखती हैं कि ''भारतीय महापुरुषों में अग्रणी गोस्वामी तुलसीदास भारतीय समाज और संस्कृति के जहां एक ओर उन्नायक हैं, वहीं दूसरी ओर भारतीय संस्कृति एवं भाषा में नित्य नवीन होने वाले परिवर्तनों को अपने साहित्य में आत्मसात करने वाले सुधारक भी। तुलसीदास के काव्य में भारतीय संस्कृति के आदर्श रूप की अप्रतिम छवि अवलोकित होती है। 'शोध दिशा' शोध अंक 49, जून–सितम्बर 2020 में डॉ॰ विजय बहादुर त्रिपाठी द्वारा शोध–पत्र ''तुलसी के काव्य में लोक पक्ष'' में वे लिखते हैं कि ''तुलसीदास ने रामचरितमानस की रचना द्वारा व्यक्ति और समष्टि दोनों को प्रवृत्तिमार्ग से कर्त्तव्यरत होने का अकाट्य सन्देश दिया है। वस्तुतः भारतीय समाज को जिस आस्था और विश्वास की आवश्यकता थी, वह रामचरितमानस के माध्यम से तुलसीदास ने प्रदान किया था। अन्तरराष्ट्रीय मूल्यांकित शोध पत्रिका (मासिक) 'संस्कार चेतना' में डॉ॰ सुदर्शन राठी द्वारा लिखे शोध पत्र रामचरित मानस की प्रतीकार्थ विवेचना, अंक – 10, मई, 2014 में वे लिखती हैं कि – ''रामचरितमानस अमर कृति है जो भक्तिकाल के अग्रणी, मानवतावादी रचनाकार, परस्पर विरोधी मान्यताओं एवं पद्धतियों में समन्वय स्थापित करने वाले लोकनायक, महाकवि तुलसीदास का निर्मल यश है। शोध आलेख : ''तुलसीदास के विचारों की सामाजिक प्रासंगिकता'' डॉ॰ जायदा सिकंदर शेख ''तुलसी की काव्य चेतना'' में जीवन मूल्यों एवं मानव मूल्यों का समन्वय है और यह मूल्य

निरूपण भारतीय संस्कृति के उदात्त मूल्यों एवं नैतिकता के आदर्शों से अनुप्राणित है। शोध पत्रिका 'संस्कार चेतना' अंक 12, अगस्त–सितम्बर 2015 में सरोज कुमारी द्वारा 'तुलसीदास की समन्वय भावना' में लिखती हैं कि ''तुलसीदास ने ज्ञान के पंथ कृपान की धारा माना है।'' लेकिन ज्ञान की श्रेष्ठता को प्रतिपादित करते हुए वे कहती हैं कि, 'कहंहि संत मुनि वेद पुराना' नंहि कुछ दुर्लभ स्यान समाना' कह कर भक्ति को ज्ञान की अपेक्षा श्रेष्ठ माना है।

विषय विस्तार

तुलसीदास अपने काल के महान चिन्तक, भक्त, कवि एवं कलाकार थे। उनके साहित्यिक चिन्तन एवं कला का सामाजिक सरोकार था, जो उनके साहित्य में स्पष्ट दिखाई देता है। उनकी दृढ़ इच्छा थी कि समाज में लोक–मर्यादा स्थापित होनी चाहिए। तत्कालीन समाज से अराजकता, अंधविश्वासों, आडम्बरों, विसंगतियों एवं विद्रूपताओं का उन्मूलन होना चाहिए। वे इसके लिए हमेशा प्रयासरत रहे। तुलसीदास की लोक मर्यादा की अवधारणा तत्कालीन सामन्ती मानवीय–सामाजिक सम्बन्धों की मर्यादा थी, जिसका मूल कारण तत्कालीन वर्ण–व्यवस्था थी। तुलसीदास ने तत्कालीन सामाजिक–धार्मिक रीति–नीति, पूजा–विधान, आचार–विचार पर प्रहार करते हुए कहा है कि –

'बादहि शूद्र द्विजन सन, हम तुम तें कछु घाटि।
जानहिं ब्रह्म सो विप्रवर, आँखि देखा वहिं डाटि।।''

तुलसीदास चाहते थे कि उनके समय में एक आदर्श, व्यवस्थित, अनुशासित, संयमित समाज की स्थापना हो। उन्होंने ऐसे समाज की परिकल्पना की थी, जिसमें एकरूपता, समता, भाईचारा, मानवीयता व आपस में तालमेल रहे। उन्होंने जनता के हित के लिए आदर्श एवं स्वस्थ समाज की न केवल परिकल्पना की अपितु उसकी स्थापना में सफल होते दिखाई दिए। तुलसीदास ने आदर्श राजा के बारे में लिखा है कि जिस शासक के राज्य में जनता पीड़ित, दिग्भ्रमित एवं दुःखी थी, वह राजा कैसा आदर्श हो सकता है –

''जासु राज प्रिय प्रजा दुखारी।
सो नृपु अवसि नरक अधिकारी।''[1]

तुलसीदास ने 'रामचरितमानस' के द्वारा व्यक्ति और समाज दोनों को अपने–अपने कर्तव्य करने का सन्देश दिया। तत्कालीन समाज को जिस प्रकार की आस्था एवं विश्वास की जरूरत थी, वह 'रामचरितमानस' द्वारा तुलसीदास ने प्रकट की। उन्होंने मानव जाति को विवेक द्वारा, आस्था के बल पर व स्वावलंबन के सहारे से फिर से जीवित किया। ''तुलसी के सुपात्र साधु–सन्यासी, योगी–यति बनकर गिरी–गुफा में तपस्या नही करते थे। न ही जीवन संघर्ष से पलायन करते थे, वे योग साधना में लीन भी नहीं रहते थे, मृगछाला पहन कर भस्म नहीं रमाते थे, बल्कि व्यक्ति के स्तर पर व अपने कर्तव्य को भली–भाँति पहचानते हैं।''[2] तुलसीदास युगीन परिस्थितियों से भली प्रकार से परिचित थे। अनेक अवसरों पर उनके साहित्य में स्त्री का तत्कालीन समाज के सन्दर्भों में आदर्श रूप में चित्रण हुआ है। कुछ लोग उन्हें नारी के प्रति अनुदार भी मानते हैं। उनकी स्त्री विषयक दृष्टि पर समाज में अनेक मत, धारणाएँ एवं विचार हैं। स्त्री के बिना लोकयात्रा बेकार है। स्त्री परिवार, समाज को एक सूत्र में पिरोने वाली प्यार, त्याग, स्नेह, समर्पण की प्रतिमूर्ति है। महर्षि मनु स्त्री को पूजनीय मान कर लिखते हैं कि –

''यत्र नार्यस्तु पूज्यन्ते रमन्ते तत्र देवता।
यत्रेतास्तु न पूज्यन्ते सर्वास्तत्राफलाः क्रियाः।।''[3]

नारी के बारे में महर्षि मनु भी लिखते हैं कि –

''पिता रक्षति कौमारे, भर्ता रक्षति यौवने।
रक्षन्ति स्थविरे पुत्राः, न स्त्री स्वातन्त्रयमर्हति।''[4]

वास्तव में स्त्री की स्थिति भक्तिकाल के समय में अत्याधिक विकट थी। विवशता के कारण नारी को आत्मदमन, बलिदान और गुलामी का जीवन बिताना पड़ रहा था। डॉ॰ इन्द्र नाथ कहते हैं कि ''तुलसी के समय स्त्री के लिए परिवार में बन्धन अनेक थे, भय भी अनेक थे, व स्वच्छन्द और अधिकार कम। आर्थिक दृष्टि से वह पुरुष के ऊपर आश्रित थी। मुगलों और पठानों की क्रूर सौन्दर्य लिप्सा ने उसे वासनात्मक आकर्षण एवं विलासात्मक महत्त्व ही दे रखा था। उस समय समृद्ध समाज मे बहुपत्नीत्व का प्रचलन था।''[5] तुलसीदास का साहित्य तत्कालीन युग की सामाजिक वास्तविकताओं से उत्पन्न हुआ था। तत्कालीन निर्गुण सन्तों के संदेशों से प्रभावित होकर शूद्र जाति के लोग धार्मिक अनुष्ठानों, क्रियाकलापों में भाग लेने लगे थे। लेकिन तुलसी को **ब्राह्मण–चेतना** के लिए यह दृष्टि स्वीकृत नहीं थी –

''जे बरनाधम तेलि कुम्हारा। स्वपय किरात कोल कलवारा।
नारि मुई घर सम्पति नासी। मूड़ मुडाइ होहिं संयासी।।
ते विप्रन सन पाँव पुजावहिं। उभय लोक निज हाथ नसावहिं।।''[6]

वे मर्यादावादी दृष्टिकोण के कारण इसको ही समस्त सामाजिक, राजनतिक अनर्थों का कारण समझते हैं–

''द्विज सुति वेचक भूप प्रजासन।
कोउ नहिं मान निगम अनुशासन।।''[7]

तुलसीदास के युग में समाज में अव्यवस्था फैली हुई थी। समाज की राजनैतिक, सामाजिक, धार्मिक, सांस्कृतिक स्थितियाँ ठीक नहीं थीं। चारों ओर अव्यवस्था फैली हुई थी। चारों ओर मर्यादाओं का उल्लंघन हो रहा था। लूट–पाट मची हुई थी। तुलसीदास की 'राचरितमानस', 'विनयपत्रिका', 'दोहावली' आदि के द्वारा सामाजिक, राजनीतिक, धार्मिक हालातों का उल्लेख मिलता है –

''राज समाज कुसाल कोटि कटु,
कलपित कलुष कुचाल नई है।
आश्रम–बरन–धर्म विरहित जग,
लोक–वेद मर्यादा गई है।
प्रजा पतित पाखण्ड पापरत,
अपने–अपने रंग रई है।''
– विनयपत्रिका

''गोंड, गंवार नृपाल महि, जमन महा महियाल।
साम न दाम न भेद कलि, केवल दण्ड कराल।।''
– दोहावली

वर्तमान युग में तुलसीदास के साहित्य की प्रासंगिकता के सन्दर्भ में हमें तत्कालीन वर्ण व्यवस्था व वर्तमान के जाति–पाति, वर्ग–विशेष के भेदभावों को देखकर लगता है कि तुलसी के तत्कालीन साहित्य के प्रेरक–प्रसंग वर्तमान में नितान्त प्रासंगिक हैं। उस समय में सभी धर्मो के लोग जीवन के आदर्शों एवं मानवीय जीवन मूल्यों से विमुख हो गए थे –

''बरन धरम नहिं आश्रम चारि,
श्रुति विरोध रत सब नर–नारी।''

तुलसीदास तत्कालीन समाज की दुर्दशा देखकर उसे सन्मार्ग पर लाना चाहते थे। वे चाहते थे कि सभी लोग सत्य, अहिंसा, समता के रास्ते पर चलकर समाज की उन्नति करें। तत्कालीन समाज अस्त–व्यस्त था। शाषकों को प्रजा के प्रति अपने दायित्वों का बोध नहीं था। वे भोग–विलास या राज्य–लिप्सा के कारण व्यस्त रहते थे। किसानों की भी दयनीय दशा थी। लोग बेरोजगार हो चुके थे। तुलसीदास के शब्दों में –

''खेती न किसान को, भिखारी को न भीख बलि।
बनिक को न बनिज, न चाकर को चाकरी।
जीविका विहीन लोग, सीद्यमान सोच बस।
कहै एक एकन्ह सों, कहां जाई काकरीं।।''

ऐसी विकट स्थिति में तुलसीदास के सामने एक ऐसे आदर्श चरित्र को जनता के सामने आदर्श के रूप में लाना अति आवश्यक था, जिससे जनता को आदर्श राजा की भूमिका के बारे में अवगत कराया जा सके। वे उसमें सफल भी हुए। राम का चरित्र एक आदर्श राजा का है। समाज सुधारक के रूप में तलसीदास ने धर्म–सम्प्रदाय के मतभेदों को भी मिटाने का सार्थक, सफल प्रयास किया। तत्कालीन समाज में अनेक धर्म, सम्प्रदाय अपने–अपने तम्बू गाड़ कर खड़े थे –

''कलिमल ग्रसे धर्म सब, लुप्त भये सद्ग्रंथ।
दंभिनि निजमति कल्प करि, प्रकट किये बहुपंथ।''

तुलसीदास ने प्रकृति के विविध चित्रों को अपने काव्यों में वर्णित किया है। वे प्रकृति प्रेमी थे। उनके प्रकृति प्रेम की वर्तमान में उतनी ही प्रासंगिकता है। तुलसीदास द्वारा प्रकृति से उपदेश ग्रहण करने का वर्णन 'रामचरितमानस' में अनेक स्थानों पर मिलता है। डॉ॰ किरनकुमारी गुप्ता ने 'रामचरितमानस' के ऐसे प्रसंगों पर 'श्रीमद्भागवत' के प्रभाव का उल्लेख किया है – ''प्रकृति से उपदेश ग्रहण करने की भावना में तुलसी पर श्रीमद्भागवत का प्रभाव है। इनके वर्षा और शरद ऋतु के वर्णन भागवत के दशम स्कंद के बीसवें अध्याय से मिलते–जुलते हैं। वर्षा, शरद तथा अन्य पर तुलसी ने लक्ष्मण को खल के प्रेम की अस्मिता एवं माया और ब्रह्म के विषय में विस्तृत व्याख्या की है।''[8]

वस्तुतः भारतीय दर्शन 'झगड़े', 'संघर्ष', 'कटुता', 'मतभेदों' और वैमनस्य को नहीं, बल्कि समन्वय को अधिक सहयोग, महत्त्व, सम्मान देता है। ''उनका मानना है कि जब परम तत्त्व 'सत्' और प्रकृति रूपी माया के रजोगुण का समन्य हुआ है तभी इस भौतिक जगत का उद्भव एवं विकास हुआ है। विकास के सभी क्रियाकलापों में 'समन्वय' की विराट सत्ता का आभास होता है। समुद्र की उत्ताल तरंगों के साथ जब सूर्य के प्रकाश का समन्वय होता है, तो शत–शत मेघ खंडों का आविर्भाव होता है।''[9] जब बादलों की वाण्यता में वायुमंडल की आर्द्रता का संयोग होता है, तो बूँदों के रूप में प्रवाहित होने वाले जल स्त्रोत का निर्माण होता है और धरती की शुष्कता में मेघ की तरलता का समन्वय होता है, तो हरे–भरे पौधों का जन्म होता है।''[10]

तुलसीदास के समय में अलग–अलग शैव और वैष्णव विचारधाराओं के अनुयायियों में मतभेद था। तुलसीदास ने शैव और वैष्णव दोनों मतों के लोगों में समभाव स्थापित करने का सफल प्रयास किया, जो वर्तमान समाज में अलग–अलग वर्ण, धर्म, वर्ग के लोगों के लिए प्रासंगिक है। तुलसीदास ने तत्कालीन शैव और वैष्णवों के मतों में सामंजस्य स्थापित करने के लिए एक तरफ शिव के मुख से –

''सोइ मम इष्ट देव रघुबीरा।
सेवत जाहि सदा मुनिधीरा।

कहलवाकर शिव को राम का अनन्य भक्त सिद्ध कर दिया तथा दूसरी ओर –

''सिब द्रोही मम दास कहावा।
से नर सपने हु मोहि न पावा।''

तथा

संकर प्रिय मम द्रोही शिव,
द्रोही मम दास।
ते न करहिं कलप भरि घोर नरक महु बास।

कहलवाकर राम को शिव का अनन्य भक्त सिद्ध कर दिया।''[11]

तुलसीदास ने शासक को प्रजा का प्रतिनिधि मानकर सच्चा सेवक माना है। वे मानते हैं कि आदर्श राजा प्रजा की सेवा में लिप्त रहकर अपने यश की कीर्ति चारों ओर फैलाता है। वे राजा के बारे में कहते हैं कि –

''बरसत हरसत लोग सब, करषत लखे न कोई।
तुलसी प्रजा सुभाग ते, भूप, भानु सो होइ।''

जिस समाज, देश या राज्य का शासक पतित, निरंकुश या प्रजा से विमुख होकर स्वेच्छा से भोग–विलास करता हुआ राज्य करता है, उसका पतन निश्चित है। राजा को प्रजा की सेवा बहुत ही समर्पण, निष्ठा, ईमानदारी, जिम्मेदारी, बुद्धिमत्ता, विवेक, दूरदर्शिता से करनी चाहिए। तुलसीदस कहते हैं कि –

''मुखिया मुख सो चाहिए, खान पान कहुँ एक।
पालइ पोषइ सकल अंग,तुलसी सहित विवेक।''

तुलसीदास ने 'रामचरितमानस' के द्वारा वर्णित अनेक पात्रों, अवसरों, त्याग व प्रेम से आदर्श परिवार के समन्वय का सन्देश देकर मानव का कल्याण किया है। उनके द्वारा दशरथ व राम, लक्ष्मण, भरत जैसे भाइयों के आदर्श उदाहरण कहाँ मिल सकते हैं। पति–पत्नी के आदर्श दाम्पत्य जीवन के प्रेरक–प्रसंग भी 'रामचरितमानस' में आदर्श परिवार की जो झांकी है, वह अन्यत्र दुर्लभ है। निश्चित ही ये सभी आदर्श एवं जीवन मूल्य भारतीय समाज के लिए वर्तमान में भी अत्यन्त प्रासंगिक है।

मध्यकाल में वर्ग–भेद, जाति–पाति का बहुत अधिक बोलबाला था। सन्त कवियों ने भी इसका विरोध किया है। ''कबीर आदि संत कवि जाति–पाति की व्यवस्था को दूर कर एक समतामूलक समाज की स्थापना

करना चाहते थे। वही प्रकृति सगुण भक्तों की भी थी। वर्ण व्यवस्था का उन्मूलन करने से ये लोग कोई लाभ तो नहीं समझते थे, पर समानाधिकार इन्हें भी मान्य था।''[12] तुलसीदास ने ऊँच–नीच के अन्तर को मिटाने व समन्वय स्थापित करने का सफल प्रयास किया। तत्कालीन समाज में ब्राह्मण शूद्र से घृणा करते थे। रामचरितमानस में राम क्षत्रिय कुल में पैदा होकर भी भालू, बंदर, राक्षस सबको भक्तिवश न केवल स्नेह करते हैं अपितु अपने हृदय से लगाते हैं। उनके रामचरितमानस में राम की उदारता वर्तमान में प्रासंगिक है। तुलसीदास ने तत्कालीन परिवेश में अनेक मतों, दार्शनिक एवं साम्प्रदायिक विचारधाराओं का भी सुन्दर समन्वय स्थापित किया। वे जीव को भगवान का ही रूप मानते हैं –

''ईश्वर अंस जीव अविनासी, चेतन अमलसहज सुखदासी।
सो माया बस भएउ गोसाई। बहयो कीर मर्कट की
नाई।।''

तत्कालीन समाज में तुलसीदास ने वादों – अद्वैतवाद एवं विशिष्टाद्वैतवाद आदि में भी सुन्दर समन्वय स्थापित किया है। इतना ही नहीं उन्होंने मध्ययुगीन समय में प्रचलित भाषाओं जैसे अवधी और ब्रज में काव्य रचना करके भाषाओं में भी समन्वय स्थापित किया है। रामचरितमास और विनय पत्रिका के स्त्रोतों में संस्कृत, हिन्दी का समन्वय स्थापित किया है।

सारांशतः हम कह सकते हैं कि तुलसीदास ने तत्कालीन समाज की सामाजिक–सांस्कृतिक विकास एवं समन्वय के अन्तरविरोधों का उन्होंने अपने साहित्य के माध्यम से निराकरण करने का सफल प्रयास किया। वहीं उनके संदेश आज भी नितान्त प्रासंगिक हैं। साहित्य के माध्यम से मानवता का जितना उत्कर्ष हो सकता है, वह उनके साहित्य में विद्यमान है। महाकवि, तुलसीदास का साहित्य वर्तमान में भी उतना ही महत्त्व रखता है। आज भी उनके साहित्य को पढ़ कर दिग्भ्रमित मानवता को जीवन पथ पर अग्रसर होने का अवसर प्राप्त होता है। निश्चित ही 'रामचरितमानस' तुलसीदास की प्रखर प्रतिभा और व्यापक चिन्तन का प्रमाण है। उसका प्रयोजन एवं प्रभाव भारतीय जन–मानस के मानसिक पटल पर आज भी उतना ही अंकित है, जितना कल था। अतः हम कह सकते हैं कि तुलसीदास के साहित्य की वर्तमान में प्रासंगिकता सटीक एवं प्रभावी है। उन्होंने समाज, दर्शन, साहित्य–संस्कृति आदि सभी क्षेत्रों में सामंजस्य स्थापित किया है। उनके साहित्यिक संदेश से जीवन और जगत के प्रत्येक प्राणी को समन्वय के साथ जीवन जीने की प्रेरणा मिलती है। उनका यह प्रयास स्तुत्य है। उन्होंने अपने साहित्य से मध्ययुगीन समाज में फैली विकृतियों, विषमताओं, द्वेषों, कटुताओं, विद्रूपताओं, अवसादों, समस्याओं का निवारण किया। उनके साहित्य द्वारा त्याग, स्नेह, प्रेम, करुणा, समता, सहानुभूति, समर्पण, सौहार्द आदि का संदेश मानवता को तब से लेकर आज तक प्राप्त हो रहा है। अतः हम कह सकते हैं कि जो साहित्य समन्वय की अपूर्व क्षमता रखता हो, जिसमें जीवन मूल्यों व आदर्शों के प्रेरक प्रसंग उच्चकोटि के हों, उसकी प्रासंगिकता हमेशा ही बनी रहेगी।

संदर्भ ग्रन्थ सूची

1. *रामचरितमानस, अयोध्या कांड, 3/71*
2. *तुलसी के काव्य में लोकपक्ष, डॉ॰ विजय बहादुर त्रिपाठी, शोध दिशा, पृ॰ 247*
3. *मनुस्मृति, अध्याय–03, श्लोक 56, पृ॰ 11*
4. *मनुस्मृति, अध्याय–08, श्लोक–03, पृ॰ 09*
5. *तुलसीदास चिंतन और कला, डॉ॰ इंद्रनाथ मदान, पृ॰ 77*
6. *तुलसी की साहित्य साधना, डॉ॰ लल्लन राय, पृ॰ 157*
7. *वही, पृ॰ 157*
8. *रामचरितमानस, 4/17/7–8*
9. *साहित्यिक निबन्ध, डॉ॰ गणपति चन्द्र गुप्त, पृ॰ 657*
10. *वही, पृ॰ 657*
11. *संस्कार चेतना, सरोज कुमारी, पृ॰ 146*
12. *तुलसीदास और उनका युग, डॉ॰ राजपति दीक्षित, पृ॰ 111*